Professor R.P. Vyas Memorial Lecture Series - V

The Partition of Punjab-1947
&
The Two Worlds of A Class and Culture Divide

Raghuvendra Tanwar
Emeritus Professor of Modern History,
Kurukshetra University &
Director, Haryana Acacemy of History and Culture,
Kurukshetra
Email : ragutanwar@gmail.com

July 25, 2018

Prof. R.P. Vyas Smriti Sansthan
&
Mahila P.G. Mahavidyalaya, Jodhpur

Organizing Committee :

- ☆ Rajendra Prasad Vyas - Chairman
- ☆ En. G.P. Vyas - Vice- Chaiman
- ☆ Dr. Manorama Upadhayaya - Secretary
- ☆ Prof. S.P. Vyas
- ☆ Dr. T.V. Vyas - Treasurer
- ☆ Shri Shyam Lal Harsha
- ☆ Shri Suraj Prakash Vyas
- ☆ Shri Nand Kishore Bhootra
- ☆ CA Naveen Kumar Jaisalmeriya
- ☆ Shri Ashok Joshi
- ☆ Smt. Shakuntala Vyas
- ☆ Smt. Kamlesh Vyas
- ☆ Smt. Santosh Vyas
- ☆ Smt. Vijaylaxmi Bhootra
- ☆ Dr. Anil Purohit
- ☆ Dr. Jyotsana Vyas
- ☆ Atul Vyas
- ☆ Shri Arun Joshi
- ☆ Dr. Manisha Vyas
- ☆ Akhil Vyas
- ☆ Smt. Khushboo Purohit

Printed at :
Jangid Computers, Jodhpur 9414308049

सेवाधर्मः परमगहनो।
योगिनाम् अपि अगम्याः।। - भर्तृहरि

कर्मयोगी प्रो. आर.पी.व्यास की लोकयात्रा

डॉ. दासनारायण

किसी विशाल वट वृक्ष के नीचे खड़े होकर जब हम विस्मय-विमुग्ध हो उसके विस्तृत आयतन की ओर देखते हैं, तब क्या हम सोच भी पाते हैं कि यह विराट वृक्ष कभी एक सरसों के दाने जैसे छोटे से बीज के भीतर छिपा हुआ था? उसी प्रकार 12 अगस्त, 1922 ईसवीं तारीख के दिन, नथावतों की बारी, नवचौकिया मोहल्ले में मारवाड़ राज्य के परम यशस्वी दानवीर राजव्यास, श्री नाथो जी के वंश में श्री आईदस व्यास, श्रीमति इन्दरकौर व्यास के सबसे छोटे (पांचवें) पुत्र के रूप में जो शिशु जन्मा उसे माता-पिता ने अपने इष्ट भगवान श्री राम का प्रसाद मान नामकरण किया 'रामप्रसाद'। उसे देखकर उस समय कौन सोच पाया होगा कि भविष्य में उसके सुदीर्घ जीवनकाल में शनैः शनैः आश्चर्यजनक प्रतिभा का, ऐसी उदार चेता मनीषी का विकास होगा, जिसका प्रभाव देशकाल की मर्यादा के भीतर सीमाबद्ध होकर भी बहुआयामी रहेगा; जो सर्वदा भिन्न भिन्न समय को भिन्न भिन्न परिस्थितियों के परिवेश में भी सतत् विकसित होकर, नर-नारियों के प्राणों में मानवात्मा की शाश्वत महिमा, सत्य-न्याय-मैत्री की सजीव प्रेरणा एवं निर्भय हो लोक कल्याण करने की स्फूर्ति जगाती रहेगी। नामकरण, बीजमंत्र होता है नवोदय शिशु का।

'राम' सम्पूर्ण वेदों का सार है। अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों का मूल आधार है। यह मात्र एक नाम नहीं वरन् महामंत्र है। राम प्रत्येक प्राणी के शरीर की जीवन शक्ति है। बाल्यकाल से ही राम शांत स्वभाव के धनी, मधुर एवं मितभाषी, परिवार की धार्मिक-सांस्कृतिक परम्पराओं के अनुगामी, कुशल खिलाड़ी और कुशाग्र विद्यार्थी के संस्कारों से युक्त थे। कालान्तर में इन्हीं

संस्कार बीजों से अधिकाधिक प्रस्फुटित-पल्लवित होकर, रामप्रसाद नामक प्रियदर्शन तेजस्वी प्रतिभाशाली नवयुवक ने खेलों, अध्ययन-अध्यापन, समाजसेवा, इतिहास लेखन एवं शोध के साथ साथ समाज के कई शिक्षण संस्थानों को पुनः संजीवनी प्रदान कर नया जीवन ही नहीं दिया वरन् उस युग के लोकनायक श्री जयनारायण व्यास-शेरे राजस्थान की नारी शिक्षा के प्रति उत्कंठित ललक को साकार मूर्त करने हेतु अपने समकालीन प्रबुद्ध मनीषियों के सहयोग से श्री जयनारायण व्यास शिक्षण संस्थान और महिला महाविद्यालय जैसी शिक्षण संस्थाओं की स्थापना का श्रेयस कार्य कर दिखाया।

बीज के अंकुरण से वृक्ष के पूर्ण विकास की प्रक्रिया भले ही जल्दी-जल्दी होती है, परन्तु इस 'जल्दी' नामक त्वरित समय इकाई में भी कई वर्षों का समय छिपा होता है। इसलिये बीज के पेड़ बनने में और व्यक्ति के सम्पूर्ण विकास में वर्षों लग जाते हैं। इसलिये श्री, विजय, भूति और नीति ध्रुवा सिद्ध मनीषी प्रो. रामप्रसाद व्यास की लोकयात्रा के 93 वर्षों का लेखा-जोखा युगानुरूप क्रमवार ही दिया जा सकता है, सागर से गागर भरा जा सकता है, गागर में सागर नहीं, क्योंकि वह असीम है।

प्रतिभा सम्पन्न अनुशासित ओलम्पियन खिलाड़ी

प्रतिभा सम्पन्न अनुशासित खिलाड़ी - किसी ओलम्पियन ख्याति अर्जित रामप्रसादजी के पिता श्री आईदासजी व्यास रेलवे विभाग में टी.आई. पद पर रतनगढ़-सुजानगढ़ में कार्यरत थे। इसलिये आपकी हाईस्कूल तक की शिक्षा सुजानगढ़ व रतनगढ़ में हुई। उन दिनों में आप फुटबॉल और वॉलीबाल खेलते और इन खेलों में आपने उन दिनों बीकानेर की राज्यस्तरीय प्रतियोगिताओं में धूम मचा रखी थी। उन दिनों स्कूल के प्रतिभावान छात्र खिलाड़ी के रूप में आपकी ख्याति सर्वाधिक थी। बीकानेर राज्य में अपनी स्कूल का प्रतिनिधित्व करते हुए आपने 'हाई जम्प' में प्रथम स्थान प्राप्त किया था। बीकानेर की राज्यस्तरीय वॉलीबाल टीम के आप कप्तान भी रहे। पढ़ाई के बजाय खेलों में कीर्तिमान स्थापित करने के कारण ही कालान्तर में उच्च अध्ययन हेतु आपको जोधपुर के जसवन्त कॉलेज में प्रवेश प्राप्त हुआ। जसवन्त कॉलेज की वॉलीबाल टीम के लगातार तीन वर्षों तक आप केप्टिन रहे। जोधपुर की वॉलीबाल टीम के भी आप खिलाड़ी रहे और कई प्रतियोगिताओं में भागीदारी निभाई। सर्व श्री गोपीनाथजी, जयनारायणजी

जोधावत, श्री चन्दजी थानवी और हबीब तब आपकी टीम में वरिष्ठ सहयोगी खिलाड़ी हुआ करते थे। आपकी वॉलीबाल टीम ने राजस्थान के इन्टर कॉलेज मुकाबलों में कई बार विजयश्री प्राप्त की। आपकी कैप्टिनशिप में जोधपुर की वॉलीबाल टीम राजपूताना ओलम्पिक में विजयी रही। सन् 1942 में अखिल भारतीय ओलम्पिक प्रतियोगिता में भाग लेने वाली राजपूताना टीम के आप खिलाड़ी रहे। सन् 1945 में आपको राजपूताना वॉलीबाल टीम का कप्तान बनाया गया। वॉलीबाल खेल में आपने नाना सम्मान, पदक, कलर्स और स्टार्स अर्जित किये। इस प्रकार एक प्रतिभावान नवयुवक छात्र खिलाड़ी के रूप में आपने ओलम्पियन खिलाड़ी के स्तर की ख्याति अर्जित की और खेल एवं शिक्षा जगत के तत्कालीन अधिकारियों को विमुग्ध कर दिया।

स्थानीय, प्रादेशिक, अन्तर्प्रादेशिक एवं राष्ट्रीय स्तर के ओलम्पियाडों में अपनी अद्‌भुत खेल प्रतिभा निरंतर अभ्यासी, अनुशासित खिलाड़ी के रूप में आपकी उभरती छवि और चहुँ ओर फैली ख्याति ने तत्कालीन अंग्रेज शिक्षा निदेशक श्री कॉक्स एवं मारवाड़ राज्य के शिक्षा मंत्री राव राजा हणुवन्त सिंह की आंखों का तारा बना दिया। शिक्षा निदेशक श्री कॉक्स युवा विद्यार्थियों के लिये पढ़ाई के साथ-साथ खेलों की अनिवार्यता के हिमायती थे और मारवाड़ राज्य के तत्कालीन शिक्षा मंत्री राव राजा श्री हणुवन्तसिंह अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के ख्याति नाम 'पोलो' खिलाड़ी थे। युवक खिलाड़ी आर.पी. व्यास इन दोनों खेल प्रेमी उच्चाधिकारियों के चहेते बन गये। खेल जीवन में आपने निष्पक्षता, स्वस्थ खेल भावना, सहयोग-सौहार्द, कुशल नेतृत्व, वाक्‌संयम, आत्मविश्वास और अनुशासित जीवन जैसे चारित्रिक गुणों का विकास किया। कालान्तर में ये ही सारे गुण आपके बहुआयामी व्यक्तित्व के आधार स्तम्भ बने।

खेल-प्रतिभा से जीविकोपार्जन का पूर्वार्ध

अपने विद्यार्थी जीवन में अध्ययन मनन की अपेक्षा खेलों को प्राथमिकता देकर युवा रामप्रसाद व्यास ने खेलों के नाना कीर्तिमान स्थापित किये। पदक, सम्मान, क्लर्स-स्टार्स जैसे खेलांकृतों से विभूषित होकर जब आपने जीविकोपार्जन के क्षेत्र में प्रवेश की ठानी तो बिना किसी प्रतिस्पर्धा के आपके समक्ष नौकरियों की कतारें लग गयी। खेल प्रेमी अंग्रेज प्रशासकों ने अपने

चहेते उदीयमान युवा खिलाड़ी के लिये रेलवे, शिक्षा विभाग, सैनिक प्रशिक्षण केन्द्र और सैन्य सेवाओं में मनमर्जी से नौकरी स्वीकारने के खुले अवसर प्रदान कर दिये।

उन दिनों जोधपुर का चौपासनी हाई स्कूल खेल पटुता, शौर्य पराक्रम प्रशिक्षण एवं छात्र अध्यापक अनुशासन का आदर्श शिक्षण संस्थान था और खेल प्रेमी कॉक्स साहब इस स्कूल के प्रिन्सीपल एवं शिक्षा निदेशक थे। युवक आर.पी. व्यास ने अति उत्साहित खिलाड़ी होने के कारण, खिलाड़ी प्रशिक्षण को तरजीह देते हुए, इसी स्कूल में इन्टरग्रेड शिक्षक के रूप में जीविका आरम्भ की और शीघ्र ही स्कूल के सर्वाधिक लोकप्रिय शिक्षक बन बैठे। चौपासनी शिक्षण संस्थान की खेल प्रतिभाओं को निखारने, उनकी ज्ञान पिपासा को संतृप्त करने के नित्य नैमितक कर्तव्य कर्मों में आप जी-जान से जुट गये। आपकी लोकप्रियता और अनुशासित जीवन पद्धति की उत्तरोत्तर परीक्षा की घड़ी अभी शेष थी।

राजपूती शौर्य-पराक्रम की धरोहर के रूप में युद्ध की तैयारी के निमित सैनिकों की भर्ती और राजपूतों के शौर्य पराक्रम के प्रशिक्षण के लिये मारवाड़ नरेश ने वर्तमान पुलिस लाईन्स के सामने, एक कोठी में 'सैन्य प्रशिक्षण स्कूल' खोला और कॉक्स साहब की सलाह पर आपको प्रतिनियुक्ति पर, उसका प्रिन्सीपल नियुक्त कर दिया।

सैन्य प्रशिक्षण स्कूल का प्रिन्सीपल कोई सिविलियन कैसे बन सकता है? मारवाड़ के सैन्याधिकारियों, ठाकुरों-मुसाहिबों में बहस छिड़ गई। कई उच्चधिकारियों की भौंहे तन गयी, परन्तु कॉक्स साहब के प्रभाव से मामला दब गया और विवाद कुछ समय के लिये टल गया। खेल प्रशिक्षण से सैन्य प्रशिक्षण संस्थान की प्रशासनिक जिम्मेदारी को व्यासजी ने नाना व्यवधानों के बावजूद बड़ी कुशलता से निभाया। कॉलेज जीवन की एन.सी.सी. ट्रैनिंग के साथ-साथ खिलाड़ी की आक्रमकता, अनुशासनबद्ध आत्मविश्वास इस प्रबन्धन-प्रशासन में सहायक हुआ। कुछ समय के बाद ग्रेजूएट ग्रेड में पदोन्नत हो, तबादले पर आपको सांभर जाना पड़ा। हीरे की चमक कभी मन्द नहीं होती, सांभर में भी आदर्श शिक्षक के रूप में आपकी कीर्ति चहुं ओर फैलने लगी। आस-पड़ोस की स्कूलों के हैडमास्टरों के बीच, श्री व्यासजी को अपनी-अपनी शालाओं में लाने की होड़ मची, सभी कॉक्स साहब से सम्पर्क

साधने लगे तो उन्होंने गुदड़ी के लाल को अन्यत्र भेजने की बजाय अपने ही पास, जोधपुर के दरबार स्कूल में बुलवा लिया।

'अपदीपोभव'

जोधपुर के दरबार स्कूल में अध्यापन के दौरान व्यासजी ने अनुभव किया कि उनके अन्य सहकर्मी अध्यापक शैक्षणिक योग्यताओं में उनसे बढ़ चढ़ कर थे। दरबार स्कूल का शैक्षणिक वातावरण चौपासनी एवं उनके कार्यक्षेत्र की दूसरी स्कूलों से सर्वथा अलग था। वहां खेलों की बजाय अध्ययन-अनुशीलन पर अध्यापन करते हुए आपने जब अपने भविष्य के बारे में चिन्तन किया तो उन्हें अपनी भूल का एहसास हुआ। मन में विचार उठा अध्ययन पर खेलकूद को वरियता देकर, शैक्षणिक योग्यताओं की उपेक्षा करके अध्यापन जीवन में उज्जवल भविष्य की कामना मृग-मरिचिका नहीं है तो क्या है?

युगीन परिस्थितियों में भी बदलाव आ रहा था। भारत स्वतन्त्र हो गया, खेल-प्रतिभा पारखी कॉक्स साहब जैसे अंग्रेज प्रशासक भारत से विदा ले रहे थे। राजस्थान प्रान्त गठित हो गया और श्री जयनारायण व्यास के नेतृत्व में लोकप्रिय मंत्री मंडल ने प्रदेश की बागडोर संभाली। राजाशाही का जमाना खत्म होते ही खेलों को राज्याश्रय मिलना बंद हो चुका था। नई सरकार के अधिकारियों की दृष्टि में उदीयमान खिलाड़ियों द्वारा अर्जित कीर्तिमानों, पदकों, कलर्स-स्टार्स का कोई महत्व शेष न था। एम.ए., एम.एस.सी. और पीएच.डी. की डिग्रियां लिये इतर प्रदेशों के लोग राजस्थान प्रदेश में प्राध्यापक बनकर आ रहे थे। अध्यापन क्षेत्र में शैक्षणिक योग्यताओं का ही सर्वत्र बोलबाला था। ऐसे संक्रमणकाल में कीर्तिमान नवयुवक खिलाड़ी ने खेल का मैदान छोड़कर पुस्तकालय में बैठकर, एम.ए., पीएच.डी. जैसी उच्च शैक्षणिक योग्यताओं को अर्जित करने का संकल्प लिया। महापुरुषों और संतों के जीवन दर्शन अध्ययन के दौरान व्यासजी को भगवान बुद्ध द्वारा अपने शिष्य भद्रक को दिये अंतिम सूत्र-बद्ध उपदेश 'अपदीपोभव' से बहुत प्रेरणा मिली। 'अपदीपोभव' (अपना दीपक स्वयं बनो) यही बुद्ध का अंतिम उपदेश था। जिसका आशय यह है कि स्वयं को निर्लिप्त बनाकर, आत्मा की पूर्ण ईमानदारी से कर्म करें तो आनन्द की प्राप्ति के साथ सारे संकल्पों की सहज पूर्णति हो जाती है। बस इसी सूत्र वाक्य का सदैव के लिये गांठ बांधकर

युवा अध्यापक श्री व्यास ने महाविद्यालय में व्याख्याता बनने का संकल्प लिया और गहन अध्ययन मनन में जुट गये। उन दिनों की बात है जब जोधपुर के जसवन्त कॉलेज में इतिहास की स्नातकोत्तर कक्षाएं (एम.ए.) प्रभात में और कानून (लॉ) की संध्याकाल में लगा करती थी। आपने एम.ए. इतिहास में प्रवेश लिया और गहन अध्ययन मनन एवं परिश्रम से इतिहास में एम.ए. की उपाधि अर्जित की और साथ ही साथ आपने एल.एल.बी. पास कर कानूनवेत्ता बनकर, जीविका कमाने का अतिरिक्त मार्ग भी प्रशस्त किया। जब राजस्थान प्रदेश की लोकप्रिय सरकार ने उच्च शिक्षा प्रसार हेतु अनेकानेक नये महाविद्यालय खोले तब आप डीडवाना के राजकीय महाविद्यालय में इतिहास के व्याख्याता (लेक्चरर) नियुक्त हुए। कालान्तर में स्थानान्तरण होकर आप पहले सरदारशहर राजकीय कॉलेज में कार्यरत रहे और बाद में जोधपुर में नव्य स्थापित एस.एम.के. कॉलेज में इतिहास के प्राध्यापक पद पर कार्यरत हुए। सन् 1962 में आप जोधपुर विश्वविद्यालय में इतिहास के व्याख्याता पद पर नियुक्त हो गऐ।

लक्ष्य की ओर तेजी से बढ़ता खिलाड़ी जैसे पीछे मुड़कर नहीं देखता, वैसे ही व्यासजी इतिहास अध्येता के उत्तरोत्तर कीर्तिमान सेमिनार, पत्रवाचनों के माध्यमों से अर्जित करने की धुन में लग गऐ।

धुन के धनी, प्राध्यापक रामप्रसादजी ने ख्याति प्राप्त इतिहासविद् डॉ. बनारसीदस सक्सेना के निर्देशन में 'रोल ऑफ नोबेलिटी इन मारवाड़ (1800-1873)' विषय पर जोधपुर विश्वविद्यालय से पीएच.डी. उपाधि अर्जित की। कालान्तर में प्रो. दशरथ शर्मा भी आपके शोध निर्देशक रहे।

वर्ष 1970 ई. में आप जोधपुर विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग में रीडर चयनित हुए और 1982 ई. में विभाग के अध्यक्ष पद से सेवानिवृत्त हुए। इस प्रकार जीवन के पूर्वार्द्ध में खेल-कूद को वरियता देकर जैसे आप कीर्तिमान खिलाड़ी बने, जीवन के उतरार्द्ध में वैसे ही कीर्तिमान अध्यापक एवं इतिहास अध्येता बनकर गौरव मंडित हुए।

संयमव्रतीः समय के प्रहरी

खेल-कूद के अभ्यासी जब खेलों के मैदान छोड़कर अध्ययन-अध्यापन के गुरुत्तर कार्य में प्रवृत्त हो ग्रंथों के अनुशीलन में व्यस्त होने लगे

तो अचानक मधुमेह यानि डायबिटीज की घातक बीमारी ने आ घेरा। युवा शरीर की रक्त शिराओं में जब आनुवंशिक और वसायुक्त गारिष्ठ भोजन की अधिकता से पाचनतंत्र बिगड़ जाता है, तब यह रोग व्यक्ति को लग जाता है। व्यासजी ने अपनी नित्य-नैमितिक जीवनचर्या को, संयम की प्रचंड अग्नि में तपाकर, रुग्णकाया को अंग्रेजी चिकित्सापरक निदान की अपेक्षा प्राकृतिक निदान से कुन्दनवत् बनाने की ठानी और अन्ततोगत्वा सफल हुए। इसके लिये सबसे पहले आपने अनिवार्य शारीरिक व्यायाम के लिये, नियमित एक-डेढ़ घंटे टेनिस खेलना आरम्भ किया। नियमित सैर के लिये आपने घर (आसोप की पोल) से विश्वविद्यालय तक पैदल जाना-आना शुरू किया। अपनी भोजन प्रणाली में आमूल परिवर्तन कर आपने नित्य खान-पान को संयमित किया। सन्तों का कथन है-''यदि अपने विचारों पर अपना अधिकार चाहते हो तो अपनी रसना पर अधिकार कर लो।'' ऐसा देखा गया है कि जिन्होंने भोजन पर अधिकार किया है, उन्होंने अपने मन पर तो अधिकार किया ही है बल्कि आगे जगत् पर भी अधिकार कर पाये हैं। प्रो. रामप्रसाद जी व्यास पर यह सन्त कथन पूरी तरह चरितार्थ होता है।

सर्वविदित है कि पुष्टिकर ब्राह्मणों का चटोरापन उनका नित्यप्रति का भोजन बहुत गरिष्ठ एवं भारी तो होता है फिर विवाह आदि पर्वोत्सवों का खाना तो छप्पन भोग बन जाता है। प्रो. रामजी ने मिष्ठान, अत्यधिक घी-तेल और मसालों के साथ-साथ आलू-चावल जैसे खाद्यान्नों का पूर्ण बहिष्कार कर दिया और उबली सब्जी, सादी पकी मूंग की दाल, दानामेथी के साथ दो बिना चुपड़े फुलकों की खुराक, दोनों वक्त लेनी शुरू की। जीवनपर्यन्त आप ऐसा ही सादा भोजन लेते रहे। 'मधुमेह' रोग ऐसा भागा कि पलट कर भी उसने पीछे मुड़कर नहीं देखा। इस भोजन संयम और नियमित पैदल-दौड़ का सुफल हुआ कि आपकी शारीरिक स्फूर्ति और तेजगति पुनः युवाओं से होड़ लेने लगी।

किसी मनोवैज्ञानिक ने बताया है कि जब मनुष्य समय की पाबन्दी का अभ्यास करते-करते उससे लयबद्ध हो जाता है, तब भौतिक घड़ियों पर उसकी आश्रिता समाप्त हो जाती है। क्योंकि तब उसके स्नायुतंत्र में कायिक घड़ी (बॉड़ी वॉच) विकसित हो जाती है। ऐसी स्थिति में वह समय का गुलाम न होकर उसका प्रहरी बन जाता है। कैसा भी, कोई भी अलार्म उसके

बोध संकेत से पूर्व बज ही नहीं सकता क्योंकि अलार्म में बजने वाले समय के पांच-सात मिनट पूर्व से ही स्नायुविक अलार्म उस व्यक्ति के समय बोध को जाग्रत कर देता है। इसीलिये वक्त के पाबन्द लोग 'समय प्रहरी' हो जाते हैं। आज की लेट-लतीफी रियायत में भले ही ऐसे लोग, वक्त की पाबन्दी को कोसते हैं, परन्तु आदतन वे विवश होते हैं।

जोधपुर विश्वविद्यालय में इतिहास विशयगत एम.ए. की प्रभातकालीन कक्षाएं प्रातः 7 बजे से आरम्भ होती थी। प्रातः 7 बजे शुरू होने वाला पहला पीरियड कोई भी प्राध्यापक पढ़ाने को तत्पर नहीं होता था क्योंकि उसके लिये बहुत सेवेरे आना जो पड़ता था। प्रो. आर.पी. व्यास जी की अलार्म प्रभाव वेला का कलरव था। पक्षियों के कुंजन पर शैया त्यागने की बरसों पुरानी आदत के कारण, उन्हें अल्ल सुबह तैयार होकर विश्वविद्यालय पहुंचने में कोई दिक्कत न थी। अतः उन्होंने लगातार कई वर्षों तक पहला पीरियड वक्त की पाबन्दी के साथ पढ़ाया।

सर्दी, गर्मी और बरसात ऋतु आये-जाये पर वक्त के पाबन्द प्रो. व्यासजी पीरियड के ऐनवक्त कक्षा में प्रवेश करते दिख पड़ते। अनेक बार कड़कड़ाती सर्दी में मुंह से बाफें निकालते या बरसात की रिमझिम में मल्हार गाते मस्तमौला विद्यार्थी प्रो. व्यास की समयबद्धता को लेकर शर्तें लगाते परन्तु नकारात्मक पक्ष सदैव हानि उठाता। प्रो. व्यासजी की चुस्ती-फुर्ती और तेजगति से प्रभावित उनके विद्यार्थी मजाक-मजाक में उन्हें आता देखकर 'ग्यारह नम्बर की बस राईट टाईम' की उक्ति फुसफुसाकर शीघ्र कक्षा में प्रवेश कर जाते थे। इस परिहास प्रशस्ति में प्रो. व्यासजी की, छात्रों में लोकप्रियता की झलक मिलती है।

यद्यपि मैं, इतिहास का विद्यार्थी नहीं हूं तथापि मैंने सुनी है एक ऐतिहासिक किंवन्दती-इंग्लैण्ड की महारानी ऐलिजाबेथ (प्रथम) अपने को वक्त की पाबन्द मानती थी और इसका प्रदर्शन प्रायः किया करती थी। जब महारानी महल से निकलकर अपनी अंगरक्षक सैन्य टुकड़ी की सलामी लेती तब समीप ही स्थित विशाल टावर पर टंगी घड़ियां दस बजाती थीं, भले ही समय कितना ही क्यों न हो। वह ठहरी इंग्लैण्ड की महारानी, उसे वक्त की पाबन्द होने पर गर्व था। उस गर्व के रक्षार्थ बेचारा टावर कर्मचारी घड़ी की सुईयां पकड़ कर बैठ सकता था। व्यासजी ठहरे विश्वविद्यालय के एक

शिक्षक, उन्हें वक्त के पाबन्द होने की आदत जो ठहरी, परन्तु इतिहास विभाग के चपरासी को प्रो. व्यासजी की समय पाबन्दी पर गर्व और पूरा भरोसा था। वह व्यासजी के कक्षा प्रवेश पर प्रात: 7 बजे अपनी और विभाग की घड़ियां जरूर मिला लिया करता था। उसको न तो किसी बी.बी.सी. अथवा अन्य समय तंत्र की जानकारी थी, बस एकमात्र विश्वास प्रो. व्यासजी के आगमन का था। ऐसे समय के प्रहरी थे प्रो. आर.पी. व्यास जी।

कालान्तर में प्रो. रामजी ग्यारह नम्बर की बस की बजाय दो पहियों वाली साईकल पर सवारी करते हुए विश्वविद्यालय पहुंचने लगे। आसोप की पोल स्थित अपने आवास से, बहुत तड़के साईकिल भगाते जसवन्त कॉलेज मार्ग की ओर बढ़ते हुए आपको प्रात:कालीन मंगला दर्शनार्थी प्राय: देखा करते थे। दोपहर में लौटती बार, विजयी सिपाही की प्रफुल्ल मुद्रा में हंसते-मुस्कराते, किसी संगी साथी से बतियाते, बोझिल साईकिल को हाथ में थामे, पदयात्री से पुन: इस मार्ग पर आपके दर्शन हो जाते।

जोधपुर विश्वविद्यालय में एक अध्ययनशील, संयमी, अनुशासित, सुसंस्कृत, निडर, स्वाभिमानी एवं निरपेक्ष व्याख्याता के आदर्श रूप में आपकी ऐसी छवि बनी, जिसकी प्रशस्ति सभी सहकर्मी प्राध्यापक किया करते थे। अनेक वर्षों तक प्रो. व्यासजी छात्रावास के अधीक्षक, चीफ प्रॉक्टर डीन एवं छात्रों के विश्वस्त परामर्शदाता का अपवाद मुक्त कार्यकाल पूर्ण किया। छात्र असन्तोष के उफनते ज्वारकाल में भी आप अडिग सिद्धान्तवादी चीफ प्रॉक्टर रूपी प्रकाश स्तम्भ बने रहे। कॉलेज एन.सी.सी. युनिट के भी आप अधिकृत संचालक रहे।

प्रो. आर.पी. व्यास जी के पढ़ाये नाना शिष्यों ने, प्रदेश के कई महाविद्यालयों-विश्वविद्यालयों में अध्यापन कर अपार ख्याति अर्जित की। अनेक ऐतिहासिक ग्रंथ लिखे और प्राय: सेमिनारों में, अपने उत्तरोत्तर ज्ञानवर्धक के लिये छाये रहते हैं। राजस्थान इतिहास, विशेषकर मारवाड़ के इतिहास, राजस्थानी भाषा और साहित्य के एनसाईक्लोपीडीया के नाम से ख्यात प्रो. जहूर खां मेहर को अपने गुरुवर्य प्रो. आर.पी. व्यासजी की असाधारण प्रतिभा और मेधा पर गुमान है। प्रो. देवनारायण आसोपा और प्रो. सौभाग माथुर भी प्रो. आर.पी. व्यास के ख्यातनाम शिष्य रहे हैं।

इतिहास पुरुष

किसी कालखण्ड विशेष में घटित घटनाक्रमों का राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में अध्ययन-विश्लेषण की संज्ञा यदि इतिहास है, तो प्रो. आर.पी. व्यास को 'इतिहास पुरुष' कहा जा सकता है। आपका समूचा जीवन मारवाड़ और पुष्करणा समुदाय की गौरवशाली ऐतिहासिक सांस्कृतिक परम्परा की ही एक कड़ी प्रमाणित होता है।

मारवाड़ इतिहास प्रसिद्ध महादानवीर राजव्यास श्री नाथोजी के वंशज भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन की पृष्ठभूमि में, मारवाड़ सामन्तशाही के प्रभावशाली अंग्रेज शिक्षाधिकारियों के चहेते और तत्कालीन ओलम्पियाड के कीर्तिमान खिलाड़ी। खेल जगत में अपना इतिहास बनाने वाले। इतिहास विषय में एम.ए., पी-एच.डी. की योग्यता अर्जित करने वाले इतिहासवेत्ता, व्याख्याता और जोधपुर विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के पहले पी-एच. डी. डॉ. व्यास की पी-एच.डी. भी अद्‌भुत और अनोखी 'रोल ऑफ नोबेलिटि इन मारवाड़ 1800-1873 ए.डी.' यानि ई. सन् 1800-1873 के कालखण्ड में मारवाड़ में सामन्तवाद की भूमिका। विश्वविद्यालय में अध्यापन के साथ-साथ आपने अनेकानेक ऐतिहासिक ग्रंथों का निरूपण किया। इतिहास विषय में शोधकार्य हेतु सहकर्मी प्राध्यापकों एवं मेधावी छात्रों को अनुप्रेरित किया। शोध निर्देशक के रूप में अनेक शोधार्थियों का शोध कार्य में मार्गदर्शन किया।

महान् ऐतिहासिक नायकों यथा महाराणा प्रताप, मेवाड़ महाराणा राजसिंह, महाराणा कुम्भा, श्री जयनारायण व्यास आदि के जीवन पर ऐतिहासिक ग्रंथ लेखन से सम्मान एवं पुरस्कार अर्जित किये। मारवाड़ इतिहास पर लेखन एवं शोधकार्य में योगदान हेतु मारवाड़ के भूतपूर्व महाराजा श्री गजसिंहजी ने वर्ष 2000 ई. में आपको 'पालकी सिरौपा' प्रदान कर सम्मानित किया। मेहरानगढ़ स्थित महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश शोध संस्थान के मुख्य परामर्शदाता एवं म्युजियम ट्रस्ट द्वारा प्रदान किये जाने वाले नाना 'मारवाड़ रत्न' पुरस्कार सम्मान, चयन समिति के संयोजक के रूप में आपने कई वर्षों तक कार्य किया। उसी ट्रस्ट ने आपको ससम्मान 'मारवाड़ रत्न' पुरस्कार देकर आभार व्यक्त किया।

वर्ष 1967 में प्रो. आर.पी. व्यास जी ने 'राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस' की स्थापना की और वर्ष 1967-70 तक इसके जोईन्ट सेक्रेटरी(वर्ष 1970-76 तक सेक्रेटरी, वर्ष 1984 में प्रसीडेन्ट बने। वर्ष 2009 में राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस के महिला पी.जी. महाविद्यालय में आयोज्य 'राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस' के 25वें सत्र की दूसरी बार अध्यक्षता करने का गौरव आपको मिला।

असंख्य शोधपत्रों का वाचन-प्रकाशन प्रो. आर.पी. व्यास द्वारा समय-समय पर यत्र-तत्र आयोज्य सेमिनारों में किया गया। उनके सम्पूर्ण ब्यौरे के लिये एक पृथक ग्रंथ लिखा जा सकता है।

ऐसी विशद, गहन अध्ययन-मनन, शोधपरक इतिहास विषयक मील पत्थरों से गुजरती हुई, जीवन के 93 वर्षों में पूर्ण हुई, इतिहास पुरुष की लोकयात्रा।

कर्मयोगी प्रो. आर.पी. व्यास की समाज सेवा

कठोपनिषद में मानव जीवन की सार्थकता के लिये चार ऋणों से उऋण होना, अनिवार्य बताया गया है। वे चार ऋण हैं-1. मातृ-पितृ ऋण 2. देव ऋण 3. ऋषि ऋण (गुरु ऋण) 4. भूमा ऋण। बताया गया है कि इन ऋणों से उऋण हुए बिना मानव को मुक्ति नहीं मिलती।

जिस प्रकार व्यक्ति के माता-पिता ने वैदिक संस्कार के अनुसार विवाह करके, अपने परिवार को पुत्र-पुत्री आदि संतानों का उपहार समाज को दिया है। उसी प्रकार हर एक सुयोग्य एवं स्वस्थ व्यक्ति को विवाह परम्परा से, परिवार को संतान संपदा से समृद्ध करना चाहिये। न जाने किस वंश परम्परा से जगद् गुरु शंकराचार्य, वल्लभाचार्य, श्री रामकृष्ण और विवेकानन्द जैसी विभूतियों का प्राकट्य हो जाये। प्रो. आर.पी. व्यासजी ने मातृ-पितृ ऋण मुक्ति हेतु एवं अपने गृहस्थ जीवन को अनुकरणीय बनाया और वे तीन-तीन सुयोग्य पुत्रों के जनक बने।

देवों ने धरती, जल, वायु, अग्नि जैसे मूलभूत तत्व हम भूमिवासियों को निजकल्याण एवं जीवनयापन के लिये प्रदान किये। हम अपने श्रम से इनका दोहन करे, अपनी आवश्यकतानुसार और शेष छोड़ दे अन्यजनों के उपयोगितार्थ। अन्न, वस्त्र, भौतिक संपदा, धनादि का उपयोग व्यष्टि से समीष्ट तक के लिये सुगम हो। प्रो. व्यासजी महादानवीर नाथोजी के ऐसे ही वंशज है।

हजारों वर्षों पूर्व से ऋषि गुरुजनों ने जो विविध ज्ञान संपदा पीढ़ी-दर-पीढ़ी हम तक पहुंचाई है और उस ज्ञान से लाभान्वित हो, हम जीविकोपार्जन कर रहे हैं। वही ज्ञान नवोदित पीढ़ी को हमें देकर जाना है। इसके लिये अध्यापकीय जीविका के अतिरिक्त भी हमें निर्धन, अपंग एवं सर्वहारा वर्ग के छात्र-छात्राओं को नि:शुल्क ज्ञान दान देना चाहिऐ। प्रो. आर.पी. व्यास जी ने इस कर्तव्य कर्म को सर्वोच्च प्राथमिकता साथ से जीवनपर्यन्त निभाया। 31 अगस्त, 1982 में श्री जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग में प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष पद से सेवानिवृत्त होने पर, शेष सारा जीवन आपने शिक्षा के प्रचार, प्रसार और शैक्षणिक प्रबन्धन में ही व्यतीत किया। जीवन की अंतिम घड़ी तक आप, अपने द्वारा स्थापित महिला पी.जी. महाविद्यालय की शैक्षणिक गुणवत्ता में श्रीवृद्धि की चर्चा करते हुए मोक्षलीन हुए।

शिक्षा क्षेत्र में प्रो. आर.पी. व्यासजी का योगदान

कठोपनिषद् में 'भूमा ऋण' के विषय में बताया गया है-व्यक्ति समाज की इकाई है, व्यक्तियों से समूह और भिन्न व्यक्ति समूहों से बनता है समाज। इसलिये प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य कर्म है कि ब्रह्मचर्य, गृहस्थ से वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करते ही स्वहित से परहित की ओर उन्मुख हो जाये। यानि स्वार्थ को तिलांजली देकर परमार्थ में पूरी निष्ठा से जुट जाये। 'भूमा' का तात्पर्य समष्टि हित से है। प्रो. आर.पी. व्यासजी ने तो 60 वर्ष की आयु में सेवानिवृत्त होते ही, समाज की शिक्षा सेवा करने का बीड़ा उठा लिया। आप पुष्टिकर एज्यूकेशन ट्रस्ट के ट्रस्टी बने। ड़ेढ़ सौ वर्ष पुरानी इस एज्यूकेशन ट्रस्ट द्वारा चार शिक्षण संस्थाएं संचालित होती थी-श्री सुमेर पुष्टिकर सीनियर सैकेण्डरी स्कूल, श्री जयनारायण व्यास बालिका विद्यालय, श्री जयनारायण व्यास पब्लिक स्कूल (इंग्लिश मीडियम) और बाड़मेर स्थित श्री जयनारायण व्यास बी.एड. कॉलेज। ट्रस्टी होने के साथ-साथ प्रो. व्यासजी इन सभी शिक्षण संस्थानों के सेवाव्रती प्रबन्ध सचिव रहे। वर्ष 1987 से 2001 तक की 14 वर्षीय अवधि में आपने बन्द होने के कगार पर पहुंचे हुए इन शिक्षण संस्थानों को नया जीवन देकर नगर के सर्वोत्कृष्ट शिक्षा संस्थानों के स्तर तक पहुंचा दिया। भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद, अनुशासनहीनता और कमजोर प्रबन्ध व्यवस्थाओं के कारण पुष्करणा समाज की इन शिक्षण संस्थाओं को कलंक एवं अपयश का ग्रहण लगा हुआ था, जिसके फलस्वरूप इनके बन्द

होने की नौबत आ चुकी थी। कर्मठ कर्मयोगी प्रो. व्यासजी ने समाज सेवा भाव से अपने प्रबन्धक सचिव कार्यकाल में लगभग एक करोड़ रुपये ट्रस्ट संपत्ति के किराये, जनप्रतिनिधियों की निधियों एवं दानादाताओं से जुटाकर इन शिक्षण संस्थाओं को पुनर्जन्म प्रदान किया।

लोकनायक श्री जयनारायण व्यासजी नारी शिक्षा-दीक्षा के हिमायती थे। उनके नाम से पुष्टिकर समाज की शिक्षण संस्थायें, एज्यूकेशन ट्रस्ट द्वारा संचालित भी हो रही थी। परन्तु उनका स्तर स्कूलीय शिक्षा तक ही सीमित था। उच्च अध्ययन के लिये समाज की छात्राओं को विश्वविद्यालय द्वारा संचालित कमला नेहरू गर्ल्स कॉलेज जान पड़ता था।

उस जमाने में जब माता-पिता बेटियों को स्कूल भेजने से भी कतराते हों, नगर से बहुत दूर राईका बाग रेल्वे स्टेशन के समीप स्थित के.एन.यू. कॉलेज में लड़कियों को उच्च अध्ययन के लिये भेजने को कैसे रजामंद होते? अत: समाज की अधिकतर छात्राएं उच्च शिक्षा से वंचित रहने को विवश थी। प्रो. आर.पी. व्यासजी ने वर्ष 1987 में मात्र 41 छात्राओं से पुष्टिकर सी.सै. स्कूल में ही, महिला महाविद्यालय की स्थापना कर दी। प्रो. व्यासजी के इस पुनीत कार्य में तत्कालीन गणमान्य प्रशासकीय एवं शिक्षाधिकारी भी सहयोगी बने और उन आठ विशिष्टजनों ने संयुक्त रूप से मिल बैठकर 'श्री जयनारायण व्यास शिक्षण संस्थान' नामक ट्रस्ट गठित की, इसका पंजीकरण करवाया और इस ट्रस्ट के अधीन महिला महाविद्यालय संचालित करने का निर्णय लिया। श्री जयनारायण व्यास शिक्षण संस्थान की स्थापना के अष्ट स्तम्भ महानुभावों का नामोल्लेख इस प्रकार हैं-1. श्री जगन्नाथ जी पुरोहित 2. प्रो. जे.के. व्यास 3. प्रो. श्रीचन्द थानवी 4. श्री श्यामकिशन जी व्यास 5. प्रो. ए.डी. बोहरा 6. प्रो. हरदत्त जी पुरोहित 7. श्री शिवलाल जी व्यास और आठवें स्वयं प्रो. आर.पी. व्यास। श्री सुमेर पुष्टिकर सीनियर सेकेण्डरी स्कूल की स्वर्णधूली में 2 अक्टूबर 1987 को जिस महिला महाविद्यालय का बीजारोपण मात्र 41 छात्राओं से हुआ, प्रो. रामप्रसाद एवं उनके सहयोगी बौद्धिकजनों के अथक प्रयासों से कालान्तर में सिवांची गेट के बाहर स्थित श्री जयनारायण व्यास बालिका सीनियर सेकेण्डरी स्कूल भवन से उसका पौधा लहलहाया, आर्ट्स और कॉमर्स फेकल्टी में छात्राओं की संख्या सहस्त्र पार कर गयीं। छात्राओं की संख्या में अप्रत्याशित बढ़ोतरी का

कारण महाविद्यालय के परीक्षा परिणाम और छात्राओं का संयमित अनुशासन ही था। 2 अक्टूबर 2002 में महिला महाविद्यालय कमला नेहरू नगर में, सूरसागर रोड पर अपने स्वयं के नव-निर्मित भवन में जा स्थापित हुआ। कालान्तर में आर्ट्स, कॉमर्स के साथ विज्ञान विषय में भी महाविद्यालय में स्नातकोत्तर स्तर का उच्च अध्ययन शुरू हुआ। आज 3500 छात्राओं की संख्या वाला महिला पी.जी. महाविद्यालय सूर्यनगरी में नारी शिक्षा का कीर्तिमान ज्योर्ति स्तम्भ है। श्री जयनारायण व्यास शिक्षण संस्थान द्वारा संचालित इस महाविद्यालयी संकुल में महिला पी.जी. महाविद्यालय के साथ-साथ दो अन्य 'प्रो. ए.डी. बोहरा मेमोरियल विमेन लॉ कॉलेज' और 'महिला बी.एड. कॉलेज' भी संलग्न हैं। डॉ. आर.पी. व्यासजी द्वारा पुष्टिकर स्कूल की स्वर्णधूली में रोपा गया नन्हा-सा महिला महाविद्यालय का पौधा आज रजत शिखर (चांदना भाखर) तले विराट बरगद बन कर नारी शिक्षा-दीक्षा की अलख जगा रहा है।

प्रो. आर.पी. व्यासजी महिला महाविद्यालय के आरम्भिक प्रिन्सीपल, कालान्तर में इसकी प्रबन्ध समिति के उपाध्यक्ष, अध्यक्ष रहे। 'श्री जयनारायण व्यास शिक्षण संस्थान' द्वारा संचालित सभी महाविद्यालयों के अध्यक्ष रहते हुए आपने महिला पी.जी. महाविद्यालय को, सेमिनारों का गढ़ बना दिया। जीवन पर्यन्त आप इस शिक्षण संस्थान के पुरोधा संस्थापक अध्यक्ष बनकर इसके सतत् विकास में तत्पर रहे। उसी के फलस्वरूप पहले राज्य सरकार ने इसे 'मॉडल कॉलेज' घोषित किया और वर्श 2017 में मेहरानगढ़ म्युजियम ट्रस्ट ने महिला शिक्षा में विशिष्ठ योगदान के लिये इसे 'मारवाड़ रत्न' पुरस्कार सम्मान से नवाजा। स्वामी विवेकानन्द की शिष्या भगवती निवेदिता युवाओं से संवाद के समय कहा करती थी-''त्याग और सेवा मोक्ष प्राप्ति के लिये नहीं। संसार में लाने-ले जाने का काम भगवान का है। इसलिये मोक्ष प्राप्ति की इच्छा से सेवा कार्य नहीं करना चाहिये। त्याग और सेवा नि:स्वार्थ भाव से होनी चाहिये।''

कर्मयोगी प्रो. आर.पी. व्यासजी ने भी नि:स्वार्थ भाव से त्याग और समाज सेवा की क्योंकि हमारे विद्यालय, प्रकल्प, कार्य पद्धति, उत्सव आदि सब कुछ व्यष्टि से समष्टि तक-राष्ट्र जागरण, मनुष्य निर्माण के समुचित अवसर, सर्वसुलभ करवाने हेतु ही स्थापित है।

लोक व्यवहार पुरुषोत्तम

महात्मा गांधी ट्रस्टीशिप विचारधारा के प्रबल समर्थक रहे हैं। उन्होंने धनी और निर्धन, श्रमिक और उद्योगपति, धार्मिक संस्थाओं, शिक्षा मंदिरों आदि को एकाधिकार से मुक्त करके समरसता भाव से संचालित करने के लिये ट्रस्टीशिप सिद्धांत पर बल दिया। ताकि व्यक्ति और संस्थायें सुचारू व्यवस्था से बिना किसी द्वेत भाव के, परस्पर प्रेम-सौहार्द से कार्य करें। प्रो. व्यासजी को ट्रस्टीशिप का गहन अनुभव हुआ जब उन्होंने पुष्टिकर एज्यूकेशन ट्रस्ट की सदस्यता एवं कालान्तर में उसकी प्रबन्ध व्यवस्था की जिम्मेदारी ली। व्यासजी ने महिला महाविद्यालय संचालन हेतु पृथक से एक ट्रस्ट 'श्री जयनारायण व्यास शिक्षण संस्थान' नाम से बनायी।

भगवत् कृपा से नथावत व्यास प्रो. आर.पी. व्यासजी का उनके माता-पिता, बहनों-भाईयों का परिवार बहुत विशालकाय रहा है। उदारचेता नाथावत व्यास श्री आईदासजी और उनकी स्नेहवत्सला भार्या, देवी इन्दरकौर के जीवन काल में ही संयुक्त परिवार में सौ के लगभग सदस्य थे। प्रो. आर. पी. व्यासजी समेत पांचों भाईयों एवं तीन-तीन बहनों एवं उनकी संतति को मिलाकर पारिवारिक सदस्यों की संख्या लगभग तीन सौ तक हो गई थी।

इतने विशाल नथावत व्यास परिवार के सभी सदस्य परस्पर सौहार्द और मेल-मिलाप से रहे, प्रत्येक सदस्य की सुख-दु:ख व्यष्टिगत नहीं अपितु समष्टिगत रहे। मांगलिक कार्यों में पूरे कुटुम्ब की भागीदार सुनिश्चित हो तथा इस विशाल परिवार में पल्लवित-पोषित संतति भी परस्पर एक-दूसरे से बराबर सम्पर्क में रहे। ऐसे महत्त् उद्देश्यों से अनुप्रेरित हो प्रो. आर.पी. व्यासजी ने वर्ष 1980 ई. में अपने श्रद्धेय कीर्तिशेष माता-पिता श्री/श्रीमती आईदास-इन्दरकौर की स्मृति में एक पारिवारिक ट्रस्ट की स्थापना की। इस विशाल कुनबे के सभी परिजन, इस ट्रस्ट के सदस्य हैं। ट्रस्ट का प्रत्येक कमाऊ व्यक्ति प्रतिमाह, एक निश्चित दर से प्रतिमाह चंदा देकर ट्रस्ट को आर्थिक अवलम्बन प्रदान करता है। ट्रस्ट की ओर से प्रतिवर्ष दो सामुहिक स्नेह-मिलन एवं भोज्य आयोजित किये जाते रहे हैं। नगर के आसपास किसी रमणिक धार्मिक सांस्कृतिक स्थल पर आयोजित इन सामूहिक अनुष्ठानों में कुटुम्बीजन परस्पर घुल-मिलकर सौहार्द पूर्ण ढंग से परिवार हित के नाना प्रस्तावों पर विचार-विमर्श करते हैं; पारिवारिक समस्याओं का समाधान

करते हैं। खेलकूद और विद्याअर्जन में विशिष्टता प्राप्त करने वाले बाल-गोपाल को पारितोषिक प्रदान कर उत्तरोतर प्रगति हेतु अनुप्रेरित किया जाता है। पदोन्नति एवं अन्य विशिष्ट सेवा में योगदान करने वाले सदस्य को माल्यार्पण से सम्मानित किया जाता है।

सभी महिलाओं एवं पुरुष ऐसे अनुष्ठानों में मनोरंजक खेल-प्रतियोगिताओं में भाग लेकर पुरस्कृत होते हैं। साथ ही प्रत्येक सदस्यों के प्रत्येक मांगलिक अवसरों पर ट्रस्ट की ओर से आर्थिक अनुदान सहयोग किया जाता है। विगत 40 वर्षों से 'श्री आईदास श्रीमति इन्दरकौर ट्रस्ट', आज भी सक्रिय है। कुटुम्ब का वरिष्ठतम सदस्य ट्रस्ट की अध्यक्षता करता है और युवा सदस्य ट्रस्ट कार्यक्रमों की समुचित व्यवस्था।

प्रो. आर.पी. व्यास जी ने अपने मर्यादित आचरण, गृहस्थी की धुरी, अन्नपूर्णा अर्धांगिनी सहचरी का वियोग हलाहल, महादेव बन चुपचाप पी लिया। तीन-तीन विवाहित पुत्रों के भरे-पूरे परिवार के साथ-साथ आप 300 सदस्यीय इस विशाल कुटुम्ब के मुखिया भी आजीवन बने रहे। अपने मधुर संभाषण एवं हास-परिहास पूर्ण सौहार्द से सभी का मन जीत लेने वाले, छोटे बड़े सभी के चहेते 'चाचा' श्री व्यासजी को व्यवहार पुरुषोत्तम कहें तो अतिश्योक्ति नहीं होगी।

प्रेयस और श्रेयस जीवन के नाना आयामों में कीर्तिमान स्थापित अर्जित कर, नथावत व्यास परिवार का यशस्वी भीष्मपितामह, इतिहास पुरुष, लोकमंगल का आग्रही, व्यवहार पुरुषोत्तम महामना डॉ. रामप्रसाद जी व्यास 93 वर्ष की शतायुबेला में 25 जुलाई 2013 को अपना अवतरण कार्य पूर्ण कर, मोक्षगामी हुए। आपने अपने नाम के अनुरूप 'राम' (नाम) और नि:श्रेयस (पारमार्थिक उन्नति) का पथ प्रशस्त करना यदि उस त्रेतायुगि राम का प्राणिमात्र पर अनुग्रह है तो उनके नाम प्रसाद की महत्ता कैसे कम हो सकती है।

अस्तु, श्रेयस और प्रेयस जीवन की लोकयात्रा के बटोही कर्मयोगी प्रो. आर.पी. व्यास जी के चरणारविन्द में सश्रद्धेय प्रणतिपाद निवेदित है।

About the Author

RAGHUVENDRA TANWAR
(DOB: 20 February, 1955)

(Brief Resume)

Present Position	:	Professor Emeritus, Kurukshetra University, Kurukshetra & : Director, Haryana Academy of History & Culture, Kurukshetra (Autonomous Body of the Govt. of Haryana)
Total Regular Teaching Experience	:	37 Years 6 Months
Kurukshetra University	:	Open Selection Professor, 1997 Senior Professor, 2015
Postal & Contact	:	Sugandhit, Dhand Road, Kurukshetra - 136 119 (Hry.)
E-mail	:	ragutanwar@gmail.com

Academic Distinctions :

(a) **First Class First Gold Medal :** M.A. History, Kurukshetra University (1977)

(b) **Second Gold Medal :** For securing the highest percentage of marks in the Social Science Faculty, Kurukshetra University (1977)

Special Honour :

(a) **Professor Emeritus :** Conferred title of Professor Emeritus by Kurukshetra University, Kurukshetra (April, 2015). Title conferred for life "in recognition of contribution to teaching, research and overall development of the University".

National Honours/National Lectures :

a) General President Punjab History Conference (2017)

b) President Indian History Congress (Contemporary) (2008)

c) President Punjab History Congress (Modern) (2001)

d) Prof. Ganda Singh Memorial Lecture (2013)

e) Prof. Sita Ram Kohli Memorial Lecture (2014)

f) Prof. Hari Ram Gupta Memorial Lecture (2015)

g) Shahid Nanak Singh Memorial Lecture (2017)

International Honours :

a) **Plenary lecture at International Conference of Historians, (2008) :** 'The Independence of India & Pakistan Sixtieth Anniversary Reflections', University of Southampton, U.K.

National Research Awards/Fellowship :

i. University Grants Commission-National Fellow (Research Awardee) (2002-2005).

ii. Indian Council of Historical Research Foreign Sources Consultation Fellowship (2005).

iii. UGC Major Research Project. (2013-2015). : "The Kashmir Dispute 1947-48: A study of Early Contemporary Views, Reactions and Press Reporting".

Offices/Positions held at Kurukshetra University :

a) Dean Academic Affairs

b) Registrar

c) Dean, Faculty of Social Sciences

d) Dean Students' Welfare

e) Head, University Museum (Dharohar)

f) Editor, University Journal of Haryana Studies

g) Director, Mahatma Gandhi All India Services Coaching Centre

h) Chairperson, Department of History

i) University Coordinator for the University Grants Commission

j) Coordinator, University NAAC Steering Committee

Major Publications :

a) **Reporting the Partition of Punjab: Press Public & other Opinions 1947** (648 pages) (2006) (Manohar, New Delhi), (Vanguard, Lahore) : The book was reviewed by leading historians for internationally reputed journals in the USA, Canada, UK and India.

b) **Politics of Sharing Power: The Punjab Unionist Party - 1923-1947** (1999) (Manohar, New Delhi) : The book was received as the first authentic study of the political system that prevailed in the undivided (pre-partition) Punjab.

c) **Bansi Lal: Life and Times - An Illustrated Chronicle (co-author)** (2012) (S. Chand & Co., New Delhi) : A biographical history with focus on the making of modern Haryana. The book has been widely acclaimed. A Hindi Edition is also available.

d) **Frankly Speaking: Essays & Opinions,** (2013) : This is a collection of articles contributed to national newspapers mainly in the 1990s.

e) **Introduction to Vinayak Damodar Savarkar,** (2016) : Hindi Edition (2016): Prabhat Prakashan, New Delhi.

Mmeber of University Bodies (Recent) :

I. Nominated as Member Board of Management of Babasaheb Bhimrao Ambedkar (Central University Lucknow) by the President of India in his capacity as Visitor of the Univeristy.

II. Nominee of the Governor of Punjab in his capacity as Chancellor on the Selection Committees of Guru Nanak Dev University, Amritsar.

III. Nominee of the Governor of Haryana in his capacity as Chancellor on the Executive Council of Kurukshetra University & Ch. Devi Lal University, Sirsa.

IV. On ICHR & UGC Peer Review & Selection Committees.

V. Member Editorial Committee Indian Historical Records Commission, New Delhi.

Research Guidance :

i. Ph.D. 15 (Awarded - 1 co-supervised)

Sports Honours :

i. Captain of the Kurukshetra University Lawn Tennis Team (1975)

Other Interests :

i. Associated with several educational institutions and educational policy framing bodies.

ii. Associated with social/community organizations particularly those working for spread of education in rural areas. Founding member of the Maharana Pratap School, Kurukshetra.

iii. Widely travelled across India and the world.

iv. Reading biographies/autobiographies.

v. Writing for national dailies (last 30 years).

The Partition of Punjab-1947 & the Two Worlds of A Class and Culture Divide

Raghuvendra Tanwar

Introduction :

The partition of the Punjab in its most basic form is a story of unprecedented human displacement and forced migration. It is a story in which millions sought new homes in environments that were alien and resistive. More than being a story of a violent divide based on faith and religion it is also a story of how a way of life and ages of coexistence came to a sudden and dramatic end.

What this paper puts forth is that on the eve of its partition and in the months that followed, there existed in the Punjab, a demographic divide that drew the strength of its division as much from religion as from culture, class and wealth. This divide stands out all the more when we observe the manner in which people reacted to the execution of the partition plan as well as the impact it left on their lives.

In other words, Punjab on the eve of its partition and the months that followed was not one but two-Punjabs. On the one hand, you have the vast majority of common people, on the second, the small peasantry, petty traders, shopkeepers and those who followed ancestral professions. This vast majority had no idea of what was happening and why it was happening. Ignorant, fatalistic and ridden with superstition, as this mass of humanity was pushed around, it went along not knowing what lay in store. No questions were asked, no voices of protests were raised. The other Punjab was far less in terms of numbers. This was the wielders of governmental authority, the owners of large land holdings, the

administrative intermediaries like zaildars and safedposhes, the wealthy barristers of Lahore and Amritsar and of course the political class of all kinds. This demographic division, when observed keenly thus appears more marked in terms of power, wealth and status, rather than faith.

Even as this divide had been in existence for ages, the partition and its process made this divide more evident. Not surprisingly when we study important partition records and related documents, the common thread that runs through shows, that the element and nature of suffering and pain did not distinguish between community to community. If there was a difference it was a difference that was the result of wealth, power and social positioning. An ordinary Muslim in this sense suffered a fate that was very much similar to say an ordinary Sikh or a Hindu.

Much of Punjab's population in the 1940s comprised of small land holders, who having lived together for long periods of time, confronting collectively the problems of shared poverty and above all the crushing weight of a feudal system that was in complete harmony with the dictates of the well oiled and effective colonial administrative system in Punjab.

This is not of course to suggest that the elements of suspicion and distrust that had roots going back in the Punjab into the 17th century had disappeared by the 1940s. Like in other parts of colonial India in Punjab too, there were routine sporadic clashes between communities, but the initiating causes in such clashes were usually some petty local issues. What is important however is that very rarely did such incidents lead to wider unrest that threatened co-existence or cause a complete disconnect with the past.

For most people even remotely connected with the partition of Punjab, memories and common perceptions not surprisingly are usually linked to death and destruction. In all these years, I have yet to come across a view that also remembers the Punjab's partition

as part of the broader political frame that included India's independence and the struggle for freedom.

There are no exact figures of those who crossed the unnatural border that divided the Punjab. Neither do we have the correct or even nearly correct figures of those that lost their lives - the women who were abducted and violated nor even, of the loss of property and assets. Just as opinions are varied so have estimates. C. N. Vakil the very eminent economist who contributed an outstanding study, 'The Economic Consequences of the Partition of India' (1959) suggests that about 6.5 million Muslims migrated out of East Punjab, PEPSU, Delhi and Himachal. Whereas about 6 million non-Muslims probably moved out of the West Punjab. The estimate of those killed has varied from as little as 30,000 to over 500,000. The generally accepted figure stands at between 500,000 to about 700,000. In terms of the financial impact, Vakil, goes by the figure of about Rs. 1400 crores - the amount of loss that was calculated as a claim by the government of India. Incidentally, this figure was in line with the figures worked out by the Shriomani Gurudwara Prabandak Committee as well.

While these figures obviously tell a story of their own, yet the true story lies beyond the figures. The brutality, the sadism and sexual molestation for example were mediums adopted not only to emphasize vulnerability of communities but also to demonstrate the incapability of men as protectors of their families. The objective of the communal violence was not only to remove the physical presence of the other community but also the cultural presence as well. Insanity that was common place enabled people to freely violate age old taboos and norms. For the vast majority of ordinary people the whole exercise was a mortified disaster as a letter published in the Civil and Military Gazette in Sept., 1947 put it:

'See what has happened in the face of the mighty assurance given by our leaders. While the big guns have found new abodes

elsewhere without difficulty the poor and helpless who were advised to stick to their homes have suffered.'

Those familiar with writings on the partition of Punjab may have noticed that in the huge volume of literature that is available, one thing is common to most studies of note. This is that, even as studies may have drawn attention to invasions, conversions and retaliations, the references to lives of ordinary people being disrupted by communal strife to the extent that one or the other of the communities had to leave an area because the dominant group would not allow them to live in the area are few and scare, if at all.

It is important to understand that the Punjab was essentially a rural province. The region's social economic construct was deeply based in a vigorous co-existence of the three major communities - Muslims, Hindus and Sikhs. Religion no doubt divided people, yet tribal and caste ties had created an undercurrent of affinity. Through their rule in the Punjab the Colonial bureaucracy remained conscious of this. As Penderal Moon put it, "a vast majority of Punjabi people were drawn from a similar racial stock, spoke a common language and were (exceedingly) conscious of being a Punjabi.

It is also important to note in the present context that in the whole of pre 1947 Punjab, that is all 29 districts, there were perhaps a mere handful of villages or rural hamlets that could be claimed as their own exclusively by any of the three major communities. Villages as we know were known more by the dominant caste that inhabited the village than by the faith of the inhabitants. This can be said even of today's Punjab, Haryana and the West Punjab. The Unionist party that had dominated the politics of Punjab in the decade preceding its partition with all its flaws had taken great pride in its politics of co-existence. In the post war months the Muslim League leadership strove hard to establish the feeling that there had never been much in common among the Punjabi society - a division had always been there.

The complete and sudden disconnect with traditions of coexistence if not harmony came to have huge implications in terms of human lives and economic disruption. A major part of this price, I argue was paid by ordinary and marginal households. What is important to note is that in most cases those that suffered the most were those that allowed their hearts to prevail over their minds. While the mind asked people to leave homes and hearths and seek safety in the numbers of one's own community, the heart ruled otherwise. This element of hope mislead the vast multitude of ordinary Punjabi households into a belief that it was all a bad dream and would soon be over. To this element of false hope was added more hope by conniving politicians and influential officials that the ordinary, the less provided need not move. This small section of the influential and resourceful pretended to be one with the vast majority of ordinary Punjabi's, but actually acted in great haste to protect their own future.

Misleading Assurances

Attention needs to be drawn here to something which has often been over sighted in writings on the partition of Punjab. With the exception of perhaps the senior Akali leaders, mainly Master Tara Singh, everyone was giving reassuring statements that even if the Punjab was partitioned, there would be no exchange of population and certainly not property. Tara Singh alone talked of exchanging population with property, if partition was to come. The list of those that advised people not to panic as an exchange of population was not planned or expected is long and includes not just Gandhi and Nehru but virtually very senior Congress and Muslim League leader of the Punjab. Throughout May and June, 1947, the Punjab was flooded with appeals directed at ordinary families. As Jagat Narain put it: "it is the duty of every citizen to stick to his home and maintain collective security and keep the morale high…".

Most of the appeals and statements that followed the 23 June Joint Session of the Punjab Legislative Assembly that formally accepted Punjab's partition said that things were heading towards normalcy. Bhimsen Sachar and Sardar Swarn Singh in a signed statement said:

"Now that Punjab has been partitioned… the time has come to concert efforts for protection of innocents… no reason now remains for continuation of hostility…".

The senior Muslim League leader Mian Amiruddin also Mayor of Lahore said:

'Now that the political struggle that led to all this turmoil has come to an end with the three major parties accepting the British award, the continuation of violence and lawlessness can only be attributed to mischief'.

No Planning for Exchange of Population

As leaders continued issuing assuring statements, families who were at heart disinclined to move in the first place took solace from the assurances and chose not to move to safer environs, even though such a decision was completely contrary to surrounding realities.

Starting from the formal announcement of the partition plan (3 June) virtually upto September, 1947, the idea that an exchange of population needs to be planned was nonexistent. The Mountbatten Papers clearly establish that initially he (Mountbatten) was keen to plan for exchanging population, but there was opposition from the political leadership - not just Mahatma Gandhi but Jawaharlal Nehru and Jinnah as well.

The Punjab Situation in After Transfer of Power is a 17 page typed document of late August, 1947. A part of the noting is by Mountbatten himself in which, he deals with his effort of trying to convince Nehru and Patel to plan for exchanging population.

Thereafter, Nehru and Patel appear in a subsequent noting to have agreed to planning protection and assistance to those who were keen to move. Not surprisingly, the first meeting that formally discussed the need to arrange for the exchange of population was held only on 3 September, 1947. It was held in Lahore and was attended by Jawaharlal Nehru and Pakistan's Prime Minister Liaquat Ali.

The Problem of Refugees and Scheme of Dealing with the Punjab Refugees are two departmental notes that highlight on the need for persuading people to return to their homes. These notes use as their source the assurances of senior Congress leaders who had been saying that the exodus of population can be checked and reversed.

This needs an emphasis because the vast majority of ordinary people trusted their respective governments and leaders. To those who were less informed of the complexities and dimensions of the partition plan in which the Punjab was just one component, the actions of respective governments were understood as indications that things would probably return to normal times and in any case no displacement of population would be involved. It was this category of people who formed the vast majority of Punjab's populace that paid the heaviest price. The well connected and resourceful by migrating in time were able to secure their assets. There were of course exceptions. The vast majority of ordinary people who stayed back had to simply leave everything behind because they had no option, because when the time came to move, the decision to do so was sudden. There was no question of waiting and watching. This happened on both sides and involved all communities.

This element of suddenness partly explains the manner in which a vast majority of Punjab's population felt betrayed, angry and helpless. With everything having been lost, human behaviour

and reaction raced to reach a new low, a level that hitherto had no precedent.

To be uprooted from one's home and place of work is painful enough in any circumstance rural or urban. For the peasantry the pain was magnified. Rural households as those who have grown up in rural environments would know, are built brick by brick, with a small part being added from the small saving that may have occurred in a crop season. Peasant families were and are known to nurture holdings, the wells, the village courtyards, with memories being linked even to trees and live stock. The pain and agony of having to disconnect suddenly and just leave everything behind is obviously difficult to describe.

Vakil notes that non Muslims vacated about 6.7 million acres of land in the Western districts of which 4.7 million acres had assured irrigation. The Muslim population that was displaced from the eastern districts and PEPSU vacated about 4.7 million acres of which a mere 1.3 million acres had irrigation. These figures reveal an important dimension of the economic impact and also explain the pain, agony and frustration of millions of rural households particularly the hard working Sikh peasantry that was displaced from the lands that they had painstakingly worked into fertility.

The Resourceful Moved Out In Time

By early 1947, as I see it there were as a result two kinds of people in the Punjab. Those that had migrated in time and by choice and made the first and profitable selection of assets and properties on the other side. On the other hand were those that stayed back. It was they who formed the vast majority that suffered not only the worst of violence but also the worst of financial impacts. By the time the actual migration started, the prime properties both in rural and urban areas on both sides had already been taken

over. As one report put it: "I went to the Tehsil to seek a workable piece of land but soon learnt that the good lands had already been occupied by relations of the Patwaris, the Tehsildars and the highest bidders".

It is interesting to note that as the first indications of the trouble began to emerge on the horizon in the Punjab in 1946, newspapers were flooded with advertisements seeking exchange of properties in Delhi, Simla and Lahore. The advertisements invariably included words like predominantly 'Hindu' or 'Muslim'. The result was, by the time that partition actually came to be implemented the resourceful and well connected had virtually resettled.

In the months leading to and following the partition of Punjab there had come into being a small section of people who focused on grabbing by any means properties and assets of value, thus creating an environment in which the burden of Punjab's partition fell mainly to the share of the less fortunate. This is something upon which even Gandhiji commented in November, 1947.

This small privileged section of Punjab's population created a peculiar situation for the manner in which they cornered commodities of value. The demand for items like Gold, Diamonds and luxury goods had actually increased in the Punjab throughout 1946 and even 1947. A report of The Tribune noted how in the latter half of 1946 about 13,00,000 tolas of Gold were smuggled into the Punjab from Belgium and France. Acting under pressure of the wealthy the Punjab government was forced to lift the control on purchase of motor vehicles in April 1947. There was a waiting list of up to two years for American cars. Cars that cost Rs. 10,000/- were selling for upto Rs. 16,000/-. The prices of Diamonds in the Punjab had doubled in the six months period of January to June, 1947. So was the case with Gold which was quoting a rate of Rs. 108/- per 10 grams. The Hindustan Times reported that

Gold and Silver worth over Rs. 250/- crores had moved out of the western districts in the last week of June (1947). In today's terms this would be of the value of Rs. 2,00,000 crore. On the other hand the prices of essential food items had increased 3 times in the 3rd week of August, 1947.

As items of mass consumption disappeared from the markets, life for the ordinary became a struggle - pushing people to the edge. There was not surprisingly a complete disconnect not only among the two classes of people but even more so with governments both in Lahore and Delhi.

As Punjab Burns - New Delhi Hosts International Conference

What could have been more ironical than the timing of the Inter Asia Relations Conference hosted in New Delhi and inaugurated on 23 March, 1947. Throughout the first fortnight of March, 1947, starting the 6th, major towns and villages across the Punjab witnessed violence and arson on a huge scale. Amritsar, Jullundur, Multan, Rawalpindi, Sialkot were up in flames. Amritsar alone saw 5000 houses being burnt down. Even though the government's figure of deaths in the March violence was 2049 killed, the Indian Annual Register put the deaths at 10,538 for rural areas and 511 for urban areas.

Prime Minister Jawaharlal Nehru inaugurated the Conference in New Delhi on 23 March. Less than 100 kilometers away in the small town of Hodal (Haryana) a massacre of Meos was underway on the same day. There were serious riots in Delhi on the same day as well.

As a report put it :

'Looking back it seems strange that the Conference passed off in the happiest and euphoric mood… and nobody seemed to remember the terrible killings. The people of Delhi did not really

understand… one cannot understand such things unless one has lived through them.'

I have referred to this conference only to give an idea of how distant the problems of the Punjab appeared to those in positions of decision making in Delhi. The Viceroy even hosted his first spring garden party on 28 March (1947). Even at the peak of violence social events continued undisturbed with the Viceroy usually playing frontal attendance at events in New Delhi and Simla.

Two Ways of Life

A small example would serve to illustrate how the two Punjabs coexisted. Advertisements for dance lessons, spring flower shows continued undisturbed and appeared alongside reports of killings that were reported in March, 1947. On 15th March, the CMG reported on the Lahore Horse Racing event. This was also the day that mobsters burnt down 50 villages in Attock.

Across the world no doubt there was a huge shortage of essential commodities in the post World War II years but Punjab was in a critical condition with regard to supply of essential commodities. Be it cloth, kerosene or even the humble match boxes everything was in short supply. Disruption of commerce and trade was of course the main reason for the food crisis that followed the displaced population into East Punjab but there were other reasons of equal importance. The area under the staple grains like wheat for example, was virtually double in the districts that went to Pakistan's part of Punjab as compared to the East.

The most common complaint at the time was the pilfering of supplies from government shops into the black market with connivance of a corrupted system. Prices of wheat, sugar, kerosene and coal were manipulated by organized syndicates. The more serious issue that followed as a sequel was that across undivided

Punjab a great part of the food supply system and the government controlled shops was in the hands mainly, of the Hindu traders. Supplies were available but at prices which common people could not afford. Shameful fortunes were thus drawn from misery and hunger.

The syndicates were known to purchase available stocks of wheat at reported prices of about Rs. 9/7 annas per maund (40 kg) and resell at a profit or Rs. 2 per maund. Several parts of south-east Punjab saw famine like conditions during the months following partition. While the Kharif, the little that there was of it, could not be harvested as fleeing families burnt it down, Rabi could not be sown.

What further added to the crisis was that the government replaced the monthly distribution of ration to weekly. This meant that a member of the family now had to spare four days in a month to line up at the ration supply shop. It further empowered the shop owners. The shortage of food grain reached such a critical stage that the government had to provide armed guards for protection of food stocks. The traders and syndicates justified the rise in prices on the ground that Banks had stopped financing them and that insurance companies were refusing to insure their stocks.

Put together the circumstances were such that money and connections alone directed the course of events. With nothing to lose people were easily driven to the edge. Several Deputy Commissioners noted how rumours of grain shortage were adding to the tension. An insightful letter to The Tribune from Jullundur, explained how life had become virtually unlivable for the vast majority of common people, so difficult that the slightest of provocation led to clashes and bloodshed. People had reached a state where the concept of fairness had disappeared:

'People have lost faith in the government and also in each other, social inhibitions have become irksome, social sanctions have vanished…. This tendency is bound to lead to anarchy… .'

'VIP' Culture Impacts Working

Nathu Ram an employee of the Dalmiya Company was given for a short time the charge of the office of Chief Liaison Officer of India in Lahore. His duty was to assign transport to families whose lives were in danger. On 17th September (1947), Nathu Ram was approached by a Muslim gardener who told him that he had with great difficulty and personal risk managed to protect and hide 20 Hindu girls for over 3 weeks. Most of these girls had lost their families. Ideally this was a case where transport and escort should have been provided on priority. But Nathu Ram was unable to act because the transport that was provided to him to arrange for such evacuation had been assigned by him to move the house hold goods of Diwan Ram Lal the newly appointed Chief Justice of the East Punjab.

The second complaint against Nathu Ram noted that he was approached by Ch. Faquir Mohammad the Zaildar of village Marh Bhagawan (Sheikhupura about 25 kilometers from Lahore). Faquir Mohammad sought Nathu Ram's help to evacuate 45 Hindus and Sikhs who he had been protecting in his haveli. Once again Nathu Ram was unable to provide transport or escort because the vehicles at his disposal were assigned by him to transport the office records of the Dalmiya Company from Dandot to Amritsar.

These are just two examples of how the implementation of the partition affected people on the ground. There must have been thousands of similar cases. Indeed, in a greater or lesser degree every town, every village must have had its own version of a Nathu Ram.

In August, 1947 the Hindustan Times did a big story on how about 10,000 well to do families from the western districts of Punjab had virtually taken over Simla. The report said that since these families had sufficient resources they started a spree of buying whatever consumer items were available, stocking up for the future.

The result was a shortage of virtually everything in the town. As the report said. As the less privileged also tried to reach Simla, the government soon restricted entry. Only the select were given the required permits. Another report said:

'While Muslim Leaguers and Congressmen are drawing their first dividends in the new dominions thousands and thousands of their less fortunate brothers and sisters are pouring in homeless, tired, hungry and stricken with disease.'

A report noted the situation in Delhi:

'A small section from Lahore seem but on a pleasure trip despite the large number of Hindus and Sikhs in misfortune… a casual glance at Delhi's cafes, restaurants and clubs gives the impression of this class being completely divorced from misfortune. It was this class that cornered vast properties and indulged in large scale black marketing.'

Even though norms were worked out with regard to allotment of properties but these regulations as countless reports show were only for the ordinary. Things got only further complicated as the district level committees created for processing applications for allotment of evacuee properties also had local leaders on them, usually the MLAs of the area. Noting how prime properties were requisitioned by the government for official use but actually transferred to influential people, one Makhan Singh Bajaj wrote: "to add to the woes of refugees every device is being used to fleece the last penny from the refugees that may have escaped the searches of the Pakistanis".

Widespread Corruption in Resettlement

The first session of the East Punjab Legislative Assembly met in Simla on 1 November, 1947. On the face of it, convening of the session was a sign that things had begun to limp back to normal times. But what came as surprise to observers and columnist

of the time was that the first agenda taken up by the Assembly was the Ministers and Legislators Salary Bill.

The Session is important also for the fact that several members drew the house's attention to rampant corruption that was prevailing among political leaders in connivance with the police. The lone women member of the Assembly Shano Devi, cited several examples of how influential people mainly politicians were interfering in allocation of properties. One member even said that funds released for refugee rehabilitation were infact being used by policemen and officers to purchase properties. The little silver and gold that refugees had managed to bring along was being used by families desperate for cash, to buy food and clothing. Such families were reported to be selling of small assets at a fraction of the value.

Not surprisingly the proceedings of the first session of the Punjab Legislative Assembly were compared by The Tribune with a fish market. The Pakistan Times dedicated an editorial to how political leaders in the east Punjab and also in the west as well had all entered into a - "shameless and bitter race to occupy offices of influence and power". Another report dwelt on how offices were being auctioned and "there was opportunism in the air".

While going through the private papers of some Deputy Commissioners at the Centre for South Asian Studies in Cambridge, I was surprised and rather shocked by an entry made by P. Brenden the Deputy Commissioner of Gurgaon (January 1945 to June 1947). As he was about to leave India following his transfer, a important political leader of the region invited him for lunch at the Imperial Hotel in New Delhi. This leader Brenden notes thanked him for sending him to jail, because now the certificate of having been imprisoned would be of great use in free India.

A very sensitive letter written to the CMG placed things in clearer perspective.

'… leaders and the rich glibly talk of birth pangs none of them have had even a pin prick leave alone the thrust of a dagger indeed they have had nothing other than the finest material against their abdomen, the moneyed have left long ago… only the ordinary remain…. It is they who are being slaughtered… .'

The Punjab in the summer and autumn of 1947 thus appears to have fallen into a rudderless uncontrolled drift. Day after day as headlines screamed of murder, arson abduction and rape the Punjab appeared unmoved. Violent events quietly and quickly became yesterday's news. Horrific scenes that were enacted in the lanes and bylines of Punjab's towns and villages with ordinary households as key players. Millions of Punjabis who until 1946-47 had known of little other than hard work and toil realized that, they did not have for the present the effort, understanding or the resource to confront the crisis and restore some element of civil and human sense.

Notwithstanding the several views that have been around for years as to why and how so much went wrong, it can be said that the dimensions of the disaster could perhaps have been lesser in degree had ground realities been taken note of. That the vast majority of Punjab's populace simply found no place and context in the execution of the partition plan led to the disaster as we know it. How little Delhi seemed to have understood the developing crisis in the Punjab can be read in countless situations and statements.

Let me give you one good example from a letter of Prime Minister Nehru to Mountbatten:

'The statement of 3 June has had a sobering and calming effect in most places. Whether people like the decision or not they accept them and have a general feeling that a settlement has been arrived at. The old tension is gone or is much less. There is no more talk, as there used to be of civil war and the like.'

That this letter was written just a few weeks before the outbreak of the violence is an irony in itself.

Prime Minister Nehru is Left Speeches

To conclude, I wish draw attention to an incident that to my mind is reflective of how the millions of ordinary displaced families perceived the partition of Punjab.

As the violence peaked in the end of August both Prime Minister Nehru and Liaquat Ali decided to undertake a joint tour for peace. On 30 August as they moved from Okara to Montgomery they came face to face with the largest foot convoy of refugees recorded in history - stretching for 60 k.m. It comprised of about 300,000 people. Many of them were Sikhs who had survived the Sheikhupura massacres. Durga Das, who later became Editor of the Hindustan Times and also compiled the writings of Sardar Patel was then a young reporter. He writes that Nehru was deeply moved by the site of the convoy and the plight of the people. It was a sad sight. The helplessness and anger of the people was easily evident.

The report said that even as the families appeared to have looked towards the vehicles of the convoy no one took note of the Prime Ministers, to the extent that they seemed not even to have recognized them. The convoy was escorted by Gurkha and Dogra troops and able bodied Sikhs who carried spears and kirpans. Nehru wanting to show his concern moved towards a family and asked them as to where they were from. While the male members of the family looked through and ignored the Prime Minister a old woman counter questioned the Prime Minister. In chaste rustic Punjabi she said:

'If you wanted to partition Punjab why did you not arrange for the exchange of population (pointing to her family she curtly said) see what misery has come to us.'

Nehru stood speechless and still and continued looking at the passing convoy. It was then that Liaquat Ali, who by then had moved to where Nehru was standing, held his hand and walked him to his car.

New Delhi & Its Two Worlds - Race for Power & Office

(Shankar's Weekly, 10th October, 1947)

Reporting the Partition of Punjab : Reproduced from Raghuvendra Tanwar, Reporting the Partition of Punjab. Press Public & Other Opinions 1947, (Manohar New Delhi 2006 & Vanguard Lahore 2006)